मार्कण्डेय काटजू को भारतीय प्रेस परिषद के अध्यक्ष पद से क्यों इस्तीफा दें देना चाहिए

अरुण जेटली

पिछले सप्ताह उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश और वर्तमान में भारतीय प्रेस परिषद के अध्यक्ष न्यायमूर्ति मार्कण्डेय काटजू ने लोकप्रिय तरीके से निर्वाचित दो गैर कांग्रेस राज्य सरकारों और उसके नेताओं को चुनकर निशाना बनाया। उन्होंने प्रेस परिषद की ओर से एक रिपोर्ट का प्रारुप जारी कर आरोप लगाया कि बिहार में मीडिया स्वतंत्र नहीं है। उन्होंने 'द हिन्दू' के एक लेख में गुजरात सरकार और उसके मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी पर निशाना साधा।

आरंभ में अपनी विद्ववता के लिए मशहूर न्यायमूर्ति काटजू कभी भी एक पारंपरिक न्यायाधीश नहीं रहे। न्यायाधीश के रुप में अपने कार्यकाल के दौरान और उसके बाद उनके कथन हमेशा विचित्र रहे हैं। सम्मानजनक टिप्पणी से उनका बैर है। ऐसा लगता है कि पश्चिम बंगाल, बिहार या गुजरात की गैर कांग्रेस सरकारों पर उनका हमला उन लोगों को धन्यवाद देने के लिए है जिन्होंने रिटायर होने के बाद उन्हें यह पद प्रदान किया है।

मेरा यह दृढ़ मत है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को रिटायर होने के बाद सरकार में नौकरी के योग्य नहीं माना जाना चाहिए। कुछ मामलों में किसी न्यायाधीश का रिटायर होने से पहले का आचरण रिटायर होने के बाद मिलने वाले पद की इच्छा से प्रेरित होता है। हम अभी भी ऐसी व्यवस्था चला रहे हैं जहां विभिन्न न्यायाधिकरणों और अन्य अर्द्धन्यायिक पदों पर रिटायर्ड न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती है।

भारतीय प्रेस परिषद का अध्यक्ष हमेशा से उच्चतम न्यायालय का सेवानिवृत्त न्यायाधीश रहा है। वह प्रेस की आजादी, उसकी आजादी के संभावित अतिक्रमण से संबंधित मामलों को देखता है और मीडिया रिपोर्टिंग और टिप्पणी में पेशेवर अंदाज की कमी से संबंधित शिकायतों को सुनता है। प्रेस परिषद का अध्यक्ष वैधानिक कार्य करता है। उसका काम न्यायपूर्ण, निष्पक्ष और राजनैतिक रुप से तटस्थ होना चाहिए। साथ ही एक न्यायाधीश, चाहे वह वर्तमान या सेवानिवृत्त है, उससे अपेक्षा की जाती है कि उसका आचरण गंभीर, सभ्य और सम्मानजनक हो। वह ऊंचे स्वर वाला, असभ्य, विचित्र या अहंकारपूर्ण व्यवहार करने वाला नहीं होना चाहिए। जब न्यायाधीश न्यायिक कार्य करते हैं कोई भी उनकी मंशा नहीं जान सकता। यहां तक कि फैसलों की आलोचना संयमित भाषा में होनी चाहिए। आलोचना सैद्धांतिक हो सकती है व्यक्तिगत नहीं। यह न्यायिक या अर्द्ध–न्यायिक कामकाज का मौलिक सिद्वांत है कि एक न्यायाधीश को राजनैतिक विवादों में खुद को शामिल करने से परहेज करना चाहिए। अगर उसकी इच्छा राजनैतिक गतिविधियों या राजनैतिक बहस में शामिल होने की है, तो उसे अपने न्यायिक या अर्द्ध–न्यायिक पद को छोड़ देना चाहिए। किसी भी तरह देखा जाए तो उनके विचारों के मामले पर भी उसी तरह बाल की खाल निकाली चाहिए जैसे राजनीतिज्ञों के मामले में किया जाता है।

न्यायमूर्ति मार्कण्डेय काटजू उस परीक्षा में विफल रहे हैं जिसमें किसी वर्तमान या सेवानिवृत्त न्यायाधीश का आकलन किया जाता है। उनके विषय और लक्ष्यों का चयन उनकी राजनैतिक पसंद से प्रेरित है। वह उन लोगों के प्रति बेहद नरमी बरतते हैं जिन्होंने रिटायर होने के बाद उन्हें काम दिया है। मुझे उनकी ऐसी एक भी टिप्पणी पढ़ने को नहीं मिली है जिसमें नेतृत्व के मामले में वंशवाद की जगह बुद्धिमानों कों प्राथमिकता देने की चर्चा की गई हो। जाहिर है इस तरह की टिप्पणियों से उन लोगों को शर्मिंदा होना पड़ेगा जिनकी इच्छा भारत को वंश परम्परा

के लोकतंत्र को वैध बनाने की है। न्यायमूर्ति काटजू के धर्मयोद्धा ने उस वक्त खुद पर नियंत्रण रखा जब 2जी स्पेक्ट्रम आबंटन से लेकर कोयला ब्लॉक आबंटन तक यूपीए के भ्रष्टाचार की आलोचना की जा रही थी। जब बिहार में व्यवस्था में बदलाव की देश और विदेश में एक बड़े वर्ग द्वारा सराहना और राजनीति के केन्द्र में विकास के उद्‌भव जैसी स्थिति का सामना करना पड़ा, न्यायमूर्ति काटजू ने प्रेस की आजादी की कमी के लिए नीतीश कुमार और बिहार सरकार पर निशाना साध दिया।

'द हिन्दू' में गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी की आलोचना से भरा उनका लेख व्यक्तिगत निंदा से भरा हुआ लगता है। उनका राजनीतिक झुकाव इस तथ्य से स्पष्ट है कि गोधरा में साबरमती एक्सप्रेस के जलने पर उन्होंने लिखा– *''यह अभी भी रहस्य है कि गोधरा में क्या हुआ?''* क्या न्यायमूर्ति मार्कण्डेय काटजू उन लोगों की वकालत करना चाहते हैं जिन्हें ट्रेन को आग लगाने का दोषी ठहराया गया है जिसके कारण अनेक लोगों की जानें गईं और कई लोग घायल हुए। क्या उच्चतम न्यायालय का एक पूर्व न्यायाधीश जो इस समय एक वैधानिक पद पर है इस तथ्य की अनदेखी कर सकता है कि मामले में निचली अदालत ने अनेक आरोपियों को दोषी ठहराया है और उनकी अपील लंबित है?

बाद में उन्होंने इस तथ्य पर टिप्पणी की कि किसी भी न्यायिक प्राधिकरण ने प्रथम दृष्टया नरेन्द्र मोदी को जिम्मेदार नहीं ठहराया है। उन्होंने न्यायिक फैसले पर बाजार में गर्म अफवाहों को प्राथमिकता दी और कहा, *''मैं अपनी न्यायिक व्यवस्था पर टिप्पणी नहीं करना चाहता लेकिन निश्चित तौर पर मैं इस कहानी पर यकीन नहीं करता कि 2002 में नरेन्द्र मोदी का हाथ नहीं है।''*

उन्होंने मोदी और गुजरात के खिलाफ अपने आक्षेप जारी रखे और गुजरात में आर्थिक विकास को कम करके आंका। उनकी टिप्पणी थी– ''बड़े औद्योगिक घरानों को रियायत, उन्हें सस्ती जमीन और सस्ती बिजली देने को शायद ही विकास कहा जा सकता है अगर उससे लोगों का जीवन स्तर ऊपर न उठे।'' उन्होंने अपनी बात को सही साबित करने के लिए चुनकर कुछ आंकड़े रखे। प्रोफेसर जगदीश भगवती और डा. अरविंद पनगड़िया ने अपने हाल के प्रकाशनों में टिप्पणी की है कि गुजरात को आजादी के समय निचले स्तर के सामाजिक संकेतक मिले थे और इन संकेतकों में बदलाव है जब गुजरात में प्रभावशाली सुधार देखने को मिला है। साक्षरता दर जो 1951 में 22 प्रतिशत थी वह 2001 में 69 प्रतिशत हो गई और 2011 में यह 79 प्रतिशत पर पहुंच गई। शिशु मृत्यु दर 1971 में प्रति एक हजार शिशुओं पर 144 थी जो 2001 में 60 और 2011 में 41 पर आ गई। गुजरात के मामले में वह पूर्वाग्रहों से प्रेरित हैं।

न्यायमूर्ति काटजू ने अपने लेख का समापन राजनीतिक अपील के साथ किया है। उनकी टिप्पणी है, *''मैं भारत की जनता से अपील करता हूं कि अगर उसे देश के भविष्य की चिंता है तो वह इन सभी बातों पर गौर करे, अन्यथा वह वही गलती कर सकती है जो जर्मनी के लोगों ने 1933 में की थी।''* मैं न्यायमूर्ति काटजू के राजनैतिक विचार रखने के अधिकार को स्वीकार कर सकता हूं, लेकिन क्या एक ऐसा व्यक्ति जिसका कार्य अर्द्ध–न्यायिक है खुलकर राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा ले सकता है। उनकी अपील राजनीतिक है। वह कांग्रेस पार्टी से ज्यादा कांग्रेस लगते हैं। अगर उच्चतम न्यायालय का वर्तमान न्यायाधीश राजनीति में इतना खुलकर शामिल हो और एक राजनैतिक अपील करे तो उस पर महाभियोग चलाया जा सकता है। अगर एक सरकारी अधिकारी यही काम करे तो उसकी सेवा समाप्त की जा सकती है। क्या एक पूर्व न्यायाधीश जो भारतीय प्रेस परिषद के अध्यक्ष के रुप में एक अर्द्ध–न्यायिक पद पर है, उसे राजनीति में सक्रिय रुप से भाग लेने से पहले इस्तीफा नहीं देना चाहिए या उसे

पद से हटा नहीं देना चाहिए। रिटायर्ड न्यायाधीशों को याद रखना चाहिए कि रिटायर होने के बाद लुटियन जोन में रहने के लिए उन्हें राजनैतिक तौर पर तटस्थ रहना होगा न कि राजनीति में दखल देना चाहिए।